हिंदी सिनेमा : यूनिट चार

नई तकनीकी और सिनेमा : संभावनाएँ और चुनौतियाँ

फिल्में- मदर इंडिया, मुगले आज़म, दीवार, पीके

फिल्म	**: मदर इंडिया**
निर्देशक	: महबूब खान
निर्माता	: महबूब खान
लेखक	: महबूब ख़ान
	: वजाहत मिर्ज़ा
	: एस अली रज़ा
मुख्य कलाकार	: नर्गिस - राधा
	: सुनील दत्त - बिरजू
	: राजेन्द्र कुमार - रामू
	: राज कुमार - शामू
	: कन्हैया लाल - सुखीलाला
	: कुमकुम - चम्पा
	: मुकरी - शम्भू
	: अज़रा - चंद्रा
	: साजिद खान - छोटा बिर्जू
	: सुरेन्द्र - छोटा रामू
संगीतकार	: नौशाद
छायाकार	: फरेदूं ए ईरानी

संपादक : शमसुदीन कादरी
प्रदर्शन तिथि : 25 अक्टूबर 1957
समय सीमा 172 मिनट

मदर इंडिया

मदर इंडिया भारतीय स्त्री की ऐसी तस्वीरों को प्रस्तुत करती है जिसे पहले कभी हिंदी सिनेमा में नहीं दिखाया गया। हिंदी सिनेमा में पहली बार ऐसा हुआ जब एक स्त्री अपने परिवार की जीविका के लिए खेत में बैल को जगह खुद को जोत देती है। इंडिया अपने समय और समाज की ऐसी फिल्म है जिसने हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि को वैश्विक स्तर के चर्चा का विषय बना दिया। नरगिस अपनी ग्लैमर छवि को तोड़कर खेतों में काम करने वाली महिला का किरदार निभाया। भारतीय दर्शकों में जो छवि नरगिस की थी उसके हिसाब से उन्होंने इस फिल्म से बहुत बड़ा रिस्क लिया। उस दौर की सबसे मंहगी और लीड भूमिकाओं वाली नरगिस के लिए यह फिल्म कई तरह की चुनौती थी इसी फिल्म में उनके बेटे की भूमिका करने वाले सुनील दत्त बाद में उनके पति बने। इस फिल्म में अब्बास मस्तान ने स्त्री की नई परिभाषा गढ़ी दी। यह फिल्म भारत में फैली सामंती और जमीदारी व्यवस्था की गहराती जड़ को बहुत मार्मिकता से प्रस्तुत करती है। फिल्म किसानी जीवन की तमाम विसंगतियों को सामने लाती है। भारतीय समाज में ग्रामीण जीवन यापन करने वाले लोग अभाव और तनाव में अपना पूरा जीवन बिता देते हैं। गांधी ने कहा था असली भारत गांवों में बसता है लेकिन वास्तविकता में देखें तो यही समाज सबसे ज्यादा उपेक्षित और हाशिए पर है। फिल्म की नायिका राधा(नरगिस) का विवाह एक गरीब किसान घर में हो जाता है, उस परिवार पर गांव के लाला का कर्ज है। जिसके बदले में वह सुद भरता है। सूद दिन दूना रात चौगुना बढ़ता है। यह सूद उनकी जिंदगी की दीमक की तरफ लग गया है। जिसे भरने के चक्कर में अपना पेट नहीं भर पाता। दुनिया भर को खाना खिलाने वाला यह समाज खाली पेट सो जाता है। जिसे अन्न दाता कहा जाता है उसकी भयावह स्थिति इस फिल्म में देखी जा सकती है। फिल्म का नायक अपनी परिस्थितियों से निपटने के लिए अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ मिलकर खेतों के काम करता है लेकिन नियति ऐसी बनी कि खेत से पत्थर

निकालते हुए उसका हाथ कट जाता है और अपाहिज हो जाता है। मदर इण्डिया संभवत: भारत की पहली ऐसी फिल्म है जिसने भारतीय समाज में निर्मित स्त्री की पारंपरिक छवि को तोड़ने में सफल हुई, जिसमें स्त्री को नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया। विख्यात निर्माता, निर्देशक महबूब ख़ान द्वारा निर्देशित मदर इण्डिया ने भारत ही नहीं विदेशों में भी ख्याति प्राप्त की। अपने समय की बहुचर्चित अभिनेत्री नर्गिस ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ अभिनय किया। राजकुमार, सुनील दत्त, राजेंद्र कुमार जैसे अभिनेताओं के अभिनय से सजी इस फिल्म की कहानी जमीदारी प्रथा और गाँव लाला द्वारा कर के रूप गरीबों-शोषितों का शोषण है। महबूब खान आधुनिक विचारों से युक्त फ़िल्मकार माने जाते हैं। उनकी फिल्मों में स्त्री का क्रांतिकारी रूप देखने को मिलता है। महिलाएं अपने अधिकारों और अस्मिता के लिए आवाज़ उठाती हैं। महबूब खान 1940 में *'औरत'* फिल्म का निर्माण कर चुके थे जो स्त्री प्रधान फिल्म है। कुछ लोग मदर इंडिया को 'औरत' का रीमेक भी मानते हैं। हालाकि दोनों की कहानी और विचारधारा अलग-अलग है। भारतीय समाज में महिलाओं को लेकर जितनी फिल्में बनी हैं उसमें मदर इंडिया मील का पत्थर है। इस फिल्म से महबूब खान ने स्त्री की ऐसी छवि विकसित की जो पहली बार घर की दहलीज़ से बाहर निकल कर समाज में अपना स्थान बनाती है। घर की पूरी ज़िम्मेदारी उठाती है।

मदर इण्डिया गाँव में रहने वाली ऐसी औरत 'राधा' की कहानी है जिसका पूरा जीवन संघर्ष और तनाव में गुजरता है। विवाह के कुछ वर्ष बाद ही खेत में काम करते हुए पति का हाथ पत्थर के नीचे दबकर कट जाता है। रात दिन मेहनत करने वाला स्वाभिमानी पति जब परिवार के लिए कुछ नहीं कर पता तो आत्मग्लानि से भर जाता है और एक दिन घर छोडकर चला जाता है। पति की अनुपस्थिति में भारत की स्त्रियों की जो दुर्दशा होती है वह इस फिल्म में बखूबी दिखाया गया है। पूरे समाज की नज़र उसपर है। गाँव का लाला जिससे राधा के पति ने कुछ उधार लिया है के बदले वह उसको भोगना चाहता है लेकिन राधा हिम्मत से उसका सामना करती है। वह पूंजीवादी निर्मम व्यवस्था से डरती नहीं हैं। बल्कि उसका विरोध करती है।

नरगिस ने इस फिल्म में दो ऐसे बेटों के माँ की भूमिका की है जिसका एक बेटा गाँव का सीधा साधा लड़का है तो दूसरा जीवन की कड़वी सच्चाई से परिचित है इसलिए उसका स्वभाव थोड़ा जटिल है। वह सामाजिक विसंगतियों को समझता है इसलिए उसके अंदर विद्रोह है। उसका रास्ता समाज की नज़र में गलत है लेकिन उसी समाज के उपेक्षित

और हाशिए के समाज के लिए सच भी है। राधा का छोटा बेटा बिरजू आरंभ से ही क्रांतिकारी है। वह बचपन से अपनी माँ का शोषण देख रहा है। अपनी माँ के सोने के कंगन को लाला की बेटी के हाथ में देखकर उसे बहुत कष्ट होता है। वह बार-बार उस कंगन को प्राप्त करना चाहता है क्योंकि वह जनता है यह कंगन उसकी माँ से जबर्दस्ती लिया गया है। वह यह नहीं समझ पता कि लाला कौन सा हिसाब लगता है जिससे पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोग उबर नहीं पाते हैं। गाँव की ही एक लड़की गंगा, जो बिरजू से प्रेम करती है। गंगा बच्चों को पढ़ाती है। बिरजू उससे कहता है कि गंगा मुझे बस इतना हिसाब पढ़ा दे कि मैं लाला का सारा हिसाब जान जाऊँ। बिरजू लाला के अत्याचारों के कारण डाकू बन जाता है। वह अपने गाँव के लोगों और अपनी माँ को खुश देखना चाहता है। लाला की बेटी के विवाह के दिन पहुँचकर वह लाला का सारा बही खाता जला देता है और सबकुछ खत्म कर देता है। लाला की बेटी के हाथों में कंगन देखकर उसे छिनने का प्रयास करता है और जब वह नहीं छिन पाता तो गाँव बाहर लेकर भागने लगता है जहां राधा बंदूक लिए रास्ते में खड़ी है। बिरजू को विश्वास नहीं तो ऐसी छवि को सामने लाता है जो पारंपरिक तो है लेकिन रूढ़ नहीं है। यह फिल्म भारतीय ग्रामीण जीवन में व्याप्त सामंती व्यवस्था के खिलाफ खड़े एक जिद्दी और जागरूक नायक की कहानी है जिसे परिस्थिति के कारण हथियार उठाना पड़ा। नायक की माँ अपनी परंपरा और संस्कृति को बचाए रखने के पक्ष में है लिहाज़ा वह अपने ही बेटे को मार कर अपने गाँव की अस्मिता को बचाए रखने का उपक्रम करती है। अपने बेटे को गोली मारकर वह एक जिम्मेदार नागरिक की भूमिका निभाती है। साथ ही उसके पास दौड़कर जाती है और उसे गोद में लेकर रोने लगती है। उसका रोने उसके अंदर की माँ की भावना को प्रदर्शित करता है।

नई तकनीकी : संभावनाएँ और चुनौतियाँ

भारत की रंगीन फिल्म का सफर किसान कन्या से आरंभ होता है। मदर इंडिया भारत में रंगीन फिल्मों की मजबूत कड़ी है। मदर इंडिया में बहुत सारी तकनीकी उपलब्धियां देखी जा सकती है। फिल्म में कई ऐसे दृश्य हैं जो तकनीकी संसाधनों से युक्त है। बाढ़ का आना, भारी मात्रा में पानी का बहना, बिजली का कड़कना, खेत में हल की जगह इंसान का जुतना, पुल के उद्घाटन का दृश्य आदि तकनीकी के नए माध्यम हैं जो फिल्म में दिखाए गए हैं। यह रंगीन फिल्मों का आरंभिक समय था। मदर इंडिया में तकनीकी का प्रयोग भरपूर किया

गया है। 1957 में प्रदर्शित 'मदर इंडिया' को हिंदी की पहली रीमेक माना जाता है। महबूब खान द्वारा ही निर्देशित 'औरत' जो कि 1940 में प्रदर्शित हुई का रीमेक थी। 'मदर इंडिया' पहली फिल्म है जिसे आस्कर के लिए चुना गया और मात्र एक वोट से यह फिल्म आस्कर से चूक गई। इसके तकनीकी और भावनात्मक पक्ष को देखते हुए सर्वश्रेष्ठ विदेशी फिल्म की श्रेणी में नामित किया गया। 'मदर इंडिया' के लिए कार्लोवी फिल्म समारोह मेंनरगिस को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिला।

फिल्म	**: मुग़ल-ए-आज़म**
निर्देशक	: के॰ आसिफ़
निर्माता	: के॰ आसिफ़
लेखक	: अमन, कमाल अमरोही, के. आसिफ़, वजाहत मिर्ज़ा, एहसान रिज़वी
संगीतकार	: नौशाद
मुख्य कलाकार	
पृथ्वीराज कपूर	: बादशाह जलालुद्दीन अकबर
दिलीप कुमार	: शहजादा सलीम
मधुबाला	: अनारकली
दुर्गा खोटे	: महारानी जोधा बाई
निगार सुल्ताना	: बाहर, राजनर्तकी
अजीत	: दुर्जन सिंह
एम कुमार	: संगतराश, शिल्पी
मुराद	: राजा मान सिंह
जलाल आग़ा	: युवक सलीम
जॉनी वॉकर	

भारतीय सिनेमा के इतिहास में मुग़ल-ए-आज़म एक ऐसी फिल्म है जिसने लोकप्रियता और सफ़तला कई मानदंड स्थापित किए। 5 अगस्त 1960 को प्रदर्शित मुग़ल-ए-आज़म हिंदी और उर्दू संवादों का ऐसा नायाब नमूना है जो विश्व स्तर पर चर्चा का विषय बनी। इस फिल्म के दृश्यों के लिए निर्देशक ने काफी मेहनत की। मुग़ल-ए-आज़म के भव्य सेट और शानदार गीतों के लिए आज भी याद किया जाता है।

फ़िल्म की कहानी इतिहास के अदृश्य पन्ने से उठाई गई है। कहानी भारत के सम्राट कहे जाने वाले अकबर के बेटे शहज़ादा सलीम (दिलीप कुमार) और दरबार की नौकरानी की बेटी नादिरा (मधुबाला) की प्रेम की कहानी है। फ़िल्म में सलीम और अनारकली एक दूसरे से प्यार करने लगते हैं। अकबर को अपने बेटे का राजदरबार की कनीज़ के साथ प्रेम करना उनकी प्रतिष्ठा के खिलाफ लगा। बहुत समझाने पर भी जब सलीम और अनारकली का प्रेम कम नहीं होता तो अकबर अनारकली राज्य कैदखाने में बंद करवा देते हैं।

बहुत कोशिशों के बाद भी सलीम अनारकली छुड़ा नहीं पाता। कुछ समय बाद अकबर अनारकली को छोड़ देते हैं। अनारकली के प्रेम में आकंठ डूबा सलीम किसी भी शर्त पर उससे शादी करना चाहता है। उसे पाना चाहता है लेकिन अकबर स्वीकार नहीं करते। सलीम अपने पिता अकबर से बगावत कर देता है। पिता और पुत्र में भयंकर लड़ाई होती है जिसमें सलीम को पकड़ा जाता है। सलीम को उसके बगावत के लिये मौत की सज़ा सुनाई जाती है। इसकी खबर जब अनारकली को लगती है तो वह वहाँ पहुँचती है। वहाँ पर अनारकली को आता देख अकबर का नौकर तोप उसकी ओर घुमा देता है। इसके बाद अकबर अनारकली को एक बेहोश कर देने वाला पंख देता है जो अनारकली को अपने हिजाब में लगाकर सलीम को बेहोश करना होता है। अनारकली ऐसा करती है। सलीम को ये बताया जाता है कि अनारकली को दीवार में चुनवा दिया गया है लेकिन उसी रात अनारकली और उसकी माँ को राज्य से बाहर भेज दिया जाता है। पिता और पुत्र के बीच प्रेम से पनपे इस दुर्भावना को के॰आसिफ़ बहुत मार्मिकता और जीवंतता से प्रस्तुत किया गया है। जिस समय यह फिल्म प्रदर्शित हुई उस दौर में स्त्री का खुलेआम प्रेम करना लगभग गुनाह माना जाता है। इस फिल्म में एक स्त्री का अपने प्रेम को खुलेआम स्वीकार करना और "प्यार किया तो डरना क्या" कहकर झूमकर गाना अनूठा और नया था। इस गीत को दृश्य में बांधने में दो साल लग गए। इस फिल्म में स्त्री स्वाभिमान के साथ अकबर के जीवन से जुड़ी नई घटना का प्रदर्शन भी अनोखा है। इस गीत के साथ ही "मोहे पनघट पे नंदलाल छोड़ गयो रे", "मुहब्बत की झूठी कहानी पे रोए", "ऐ मुहब्बत जिंदाबाद" बहुत चर्चित हुआ। हिंदी सिनेमा के इतिहास में के.आसिफ पहले ऐसे निर्देशक थे जिनके लिए सिनेमा जुनून था। उन्हें इसी फिल्म के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने फिल्म निर्माण की कोई खास ट्रेनिंग नहीं ली। 'मुग़ल-ए-आज़म' को बनाने में कुल चौदह वर्ष लग गए। पहली फिल्म 'फूल' 1945 में आयी जो कम चर्चित हुई। 'मुग़ल-ए-आज़म' 1960 में प्रदर्शित हुई और मील का पत्थर साबित हुई। कहा जाता है कि इस फिल्म को बनाने में आसिफ बर्बाद हो गए। जिस दौर में फिल्में 10-15 लाख में बन जाती थी, उस दौर में मुगले आज़म को बनाने में डेढ़ करोड़ रुपए लग गए। इस फिल्म से जुड़ी अनंत कहानियाँ हैं जिसमें कुछ बहुत मशहूर भी हैं। आसिफ का नौशाद से पैसे देकर गाने लिखने को कहना और नौशाद का मना करना, फिर मान जाना, गुलाम ली का फिल्म के लिए पहली बार गाने को तैयार होना आदि। यह फिल्म हिंदी ही नहीं बल्कि भारतीय सिनेमा के इतिहास की पहली ऐसी फिल्म थी जिसमें हजारों

हाथी, घोड़ों और सैनिकों का प्रयोग हुआ। सलीम और अकबर के बीच युद्ध के दृश्य में वास्तविकता दिखाने के लिए जयपुर रेजिमेंट के सैनिकों का भी इस्तेमाल किया गया। आसिफ ने तत्कालीन भारतीय रक्षामंत्री कृष्णा मेनन से बाकायदा इसके लिए कानूनी स्वीकृति भी थी। 'प्यार किया तो डरना क्या' गीत को शूट करने में दस लाख से भी अधिक रुपए खर्च हुए। 'मुग़ल-ए-आज़म' के संवादों ने फिल्म की लोकप्रियता को नया आयाम दिया। विकिपीडिया पर फिल्म की निम्न विशेषताएँ बतायी गई हैं-

- पृथ्वीराज कपूर और मधुबाला की अदाकारी।
- मधुबाला और दिलीप कुमार की प्रेमी-प्रेमिका जोड़ी।
- के. आसिफ़ का शानदार निर्देशन।
- फ़िल्म के लिए बनाया गया शीशमहल का सेट।
- युद्ध का बड़े पैमाने पर चित्रण, हाथी-घोड़े, पोशाक, आभूषण और हथियार आदि।[4]
- ज़िंदाबाद, ज़िंदाबाद, ऐ मुहब्बत ज़िंदाबाद गाने के कोरस में 100 से अधिक गायकों ने भाग लिया।
- उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ साहिब ने ठुमरी "प्रेम जोगन बनकें" और "शुभ दिन आयौ" गायी।
- मुग़ल-ए-आज़म के सेट और प्रत्येक कलाकार के लिए अलग-अलग कपड़े तैयार किए गए थे। जिसके चलते यह फ़िल्म ऐतिहासिकता को दर्शाने में सफल रही थी।
- इसके किरदारों के कपड़े तैयार करने के लिए दिल्ली से विशेष तौर पर दर्ज़ी और सूरत से काशीदाकारी के जानकार बुलाये गए थे। हालांकि विशेष आभूषण हैदराबाद से लाए गए थे। अभिनेताओं के लिए कोल्हापुर के कारीग़रों ने ताज बनाया था।
- राजस्थान के कारीगरों ने हथियार बनाए थे और आगरा से जूतियाँ मंगाई गई थीं। फ़िल्म के एक दृश्य में कृष्ण भगवान की मूर्ति दिखाई गई है, जो वास्तव में सोने की बनी हुई थी।मुग़ल-ए-आज़म मुम्बई के मराठा मंदिर में 5 अगस्त, 1960 को प्रदर्शित हुई थी।

- मुग़ल-ए-आज़म फ़िल्म उर्दू, तमिल और अंग्रेज़ी में बनी थी।
- मुग़ल-ए-आज़म फ़िल्म का काम बेहद धीमी गति से होता था। के. आसिफ़ एक-एक दृश्य के पीछे बहुत मेहनत करते थे।
- पहले एक साल में सिर्फ़ पृथ्वीराज कपूर और दुर्गा खोटे के दृश्य शूट हुए थे।
- पूरे वर्ष के दौरान मात्र एक सेट के दृश्य ही शूट हुए।
- मुग़ल-ए-आज़म का एक सेट तैयार होने में महीनों का समय लग जाता था। कुछ सेट दस साल तक भी नहीं बन पाए।
- इस फ़िल्म की शूटिंग मोहन स्टूडियो में हुई थी। आउटडोर शूटिंग जयपुर में हुई थी। क़रीब सौ लोगों की यूनिट सर्दियों में जयपुर गई थी, पर शूटिंग गर्मियों में हुई।
- यूनिट के लोग भारतीय सेना के बैरक़ में रहते थे।
- फ़िल्म में युद्ध के दृश्यों के लिए सेना ने मदद की थी।
- "**जब प्यार किया तो डरना क्या**" गाने की शूटिंग रंगीन हुई थी, बाक़ी पूरी फ़िल्म श्वेत श्याम थी। इस गाने की शूटिंग के पीछे 1 करोड़ रूपए खर्च कर दिए गए थे, जबकि उस ज़माने में 10 लाख रुपयों में भव्य फ़िल्म बन जाती थी।
- फ़िल्म की शूटिंग इतनी लम्बी चली कि कई दृश्यों में दिलीप कुमार की उम्र अधिक और कई में कम लगती थी।
- इस फ़िल्म के 150 प्रिंट एक साथ प्रदर्शित किए गए जो कि एक कीर्तिमान था।
- इस फ़िल्म ने कमज़ोर शुरूआत की और लोगों को लगा कि यह फ़िल्म असफल हो जाएगी लेकिन इस फ़िल्म ने अभूतपूर्व कमाई की।

नई तकनीकी : संभावनाएँ चुनौतियाँ

साठ के दशक में जितनी भी फिल्में निर्मित हुई उसमें मुगले आज़म सबसे ज्यादा लोकप्रिय और चर्चित हुई। विख्यात निर्देशक, निर्माता सोहराब मोदी की बहुचर्चित फिल्म 'झांसी की रानी' (1953) प्रामाणिक रूप से पहली रंगीन फिल्म मानी जाती है। इस समय तक रंगीन फिल्में बनने लगी थीं। आसिफ ने भी 'मुग़ल-ए-आज़म' के गाने सबसे लोकप्रिय गीत 'प्यार किया तो डरना क्या' के अलावा कुछ महत्वपूर्ण दृश्यों की शूटिंग टेक्निकलर में की काफी पसंद की गई। इस फिल्म की शुरुआत तब हुई जब रंगीन सिनेमा का आरंभ नहीं हुआ

था। टेक्निकलर द्वारा कुछ दृश्यों को फिल्माने के बाद जब उसकी गुणवत्ता बढ़ गई तो आसिफ़ ने पूरी फिल्म दुबारा टेक्निकलर में शूट किया। उनका यह फैसला बहुत महंगा सौदा था लेकिन आसिफ़ ने इस फिल्म को नायाब बनाने की कसम खा ली थी। 14 साल में तैयार इस फिल्म को कई बार रोकना पड़ा। जब यह फिल्म तैयार हुई तो आधा कलर और आधा ब्लैक एंड वाइट में प्रदर्शित हुई। फिल्म में युद्ध के दृश्य, हजारों हाथी-घोड़ो के दृश्य, धमाकों की आवाजों के लिए नई तकनीकी का पूरा उपयोग किया। मुगले आज़म के लिए के लिए विशाल सेट बनवाए गए। शीशमहल बनाने में लाखों रुपए खर्च हुए। शीशे के महल होने के कारण सेट पर लाइटिंग की बड़ी समस्या हुई क्योंकि शीशे पर लाइट रिफलेक्ट होती थी। इसके शीशे के महल मलेशिया से मँगवाए गए। ब्रिटिश डायरेक्टर डेविड लीन को बुलाया गया जिन्होंने शीशे के महल पर शूटिंग को असंभव बताया। आसिफ साहब ने यहाँ भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और अपने क्रू के साथ मिलकर सभी शीशों पर मोम की एक पतली परत चढ़ा दी जिससे रिफ्लेक्शन की समस्या दूर हो गयी और शूटिंग शुरू हो गयी। शूटिंग तो होने लगी लेकिन विजुअल्स साफ नहीं आते थे। सिनेमेटोग्राफर आर.डी. माथुर ने शीशों पर झीने कपड़े डालकर शूटिंग शुरू की। कहा जाता है कि शीशमहल को 500 ट्रकों की हेडलाइट और 100 रिफलेक्टर्स से रोशन किया जाता था। तब शूटिंग की जाती थी। शीशे के बने आलीशान और भव्य सेट तथा शानदार पटकथा, गीत, अभिनय, संगीत के कारण मुगले आज़म आज भी हिंदी सिनेमा की अनमोल फिल्म है। इस फिल्म में तत्कालीन नवीन तकनिकियों का भरपूर प्रयोग किया गया।

फिल्म	**: दीवार**
निर्देशक	यश चोपड़ा
निर्माता	गुलशन राय
लेखक	सलीम ख़ान, जावेद अख्तर
पटकथा	सलीम ख़ान, जावेद अख्तर
संगीतकार	राहुल देव बर्मन
गीतकार	साहिर लुधियानवी
चलचित्रण	के जी
सम्पादक	टी आर मंगेशकर, प्राण मेहरा

कला निर्देशक	देश मुख़र्जी
पार्श्व गायक	आशा भोसले, मन्ना डे, किशोर कुमार, भूपेंद्र सिंह, उर्सुला वाज़, उषा मंगेशकर
प्रदर्शन तिथि(याँ)	1 जनवरी 1975
मुख्य कलाकार	
अमिताभ बच्चन	विजय वर्मा
शशि कपूर	रवि वर्मा
निरूपा रॉय	सुमित्रा देवी, रवि व विजय की माँ
सत्येन्द्र कपूर	आनन्द वर्मा, रवि व विजय के पिता
नीतू सिंह	लीना नारंग
परवीन बॉबी	अनिता
इफ़्तेख़ार	मुल्कराज धाबडिया
मनमोहन कृष्णा	डीसीपी नारंग
मदन पुरी	सामन्त
सुधीर	जयचन्द
जगदीश राज	जग्गी
राज किशोर	दर्पण
युनुस परवेज़	रहीम चाचा, कुलियों का नायक
मोहन शेरी	पीटर का आदमी
मास्टर अलंकार	बालक विजय वर्मा
मास्टर राजू	बालक रवि वर्मा
राजन वर्मा	लच्छू
ए के हंगल	चन्दर के पिता
दुलारी	चन्दर की माँ
सप्रू	मिस्टर अग्रवाल
कमल कपूर	आनन्द वर्मा का मिल मालिक

कुछ फिल्में अपने कलेवर में इतनी विराट और भव्य होती हैं कि उन्हें वर्षों भूला नहीं जा सकता है। दीवार एक ऐसी ही फिल्म है। 1975 प्रदर्शित दीवार को विख्यात निर्देशक,

निर्माता यश चोपड़ा ने बनाया। इसी फिल्म से अमिताभ बच्चन के साथ 'एंग्री यंग मैन' का नाम जुड़ गया। इस फिल्म ने अमिताभ बच्चन को हिंदी सिनेमा का चमकता सितारा बना दिया। इस फिल्म से अमिताभ वर्ड सिनेमा के बड़े स्टार बनकर उभरे। यह हिंदी सिनेमा का वह दौर था भारतीय समाज बहुत बड़े परिवर्तन के लिए तैयार था। यह समय राजनीतिक परिवर्तन का सबसे कठिन समय था। समाज नए विचारों से प्रभावित हो रहा था। 'दीवार' की कहानी अंडरवर्ल्ड डॉन हाजी मस्तान से जुड़ी हुई है। अमिताभ बच्चन ने हाजी मस्तान की ज़िंदगी को पर्दे पर जीवंत कर दिया। इस फिल्म ने हाजी मस्ताना के जीवन को फिर से समझने की नई दिशा दे दी।

फिल्म की कहानी शुरू होती है आनंद वर्मा (सत्यन कप्पू) से जो मजदूर यूनियन का लीडर है। यह वह समय था जब सरकारें मजदूर, अध्यापक, छात्र यूनियन के प्रति अपना रवैया नर्म रखती थीं। आनंद वर्मा फिल्म में गरीबों और मजदूरों के अधिकारों के लिए आवाज उठाता है। कंपनी के मालिकों द्वारा होने वाली ज़्यादतियों और अत्याचारों के लिए वह लगातार संघर्ष करता है। उसके इस अधिकार के प्रति होने वाले स्वभाव के उसे परिवार सहित जान से मारने की धमकी दी जाती है। परिवार के मारे जाने के डर से आनंद उनके सामने झुक जाता है और उनकी बात मान लेता है। इस बात से कर्मचारियों में भारी गुस्सा आ जाता है। मजदूर आनंद को जान से मारने के उसपर हमला करते हैं। दोनों तरफ डरा हुआ आनंद एक दिन घर छोड़कर भाग जाता है। आनंद की पत्नी सुमित्रा (निरुपमा रॉय) मजदूरों के गुस्से और मालिकों के अत्याचार से ऊबकर अपने दो बच्चों को लेकर भाग जाती है। गुस्से से पागल मजदूर आनंद के बेटे विजय (अमिताभ बच्चन) पर 'मेरा बाप चोर है' लिख देते हैं। दूसरा छोटा बेटा रवि (शशि कपूर) भी इनके साथ प्रताड़ित होता है। सुमित्रा अपने बच्चों के साथ बंबई आ आती है। दोनों बच्चों को पालने के लिए वह मजदूरी करती है। दोनों बच्चों को पढ़ाती है। लेकिन अपनी माँ की स्थिति देखकर विजय भी मज़दूरी करने लगता है। वह पढ़ नहीं पाता है। अपने छोटे भाई रवि को पढ़ाकर बेहतर इंसान बनाने के लिए विजय दिनरात मेहनत करता है। पढ़ लिखकर रवि पुलिस अफ़सर बन जाता है और अपने साथ हुए अत्याचारों और ज़्यादतियों के कारण विजय सामाजिक सिद्धान्त सच्चाई से मेल नहीं कर पाता। उसे अपने जीवन के कटु अनुभव और अभाव धीरे-धीरे अल्डर्वर्ल्ड की तरफ ले जाते हैं। विजय यह बात समझ चुका है कि जिसके पास बल और धन है उसी के सामने दुनिया झुकती है। विजय ने जब भी ईमानदारी और सच्चाई के साथ चलने की कोशिश की उसे दुख

उठाना पड़ा इसलिए वह अपराध की दुनिया चुनता है और देखते ही देखते वहाँ का बड़ा नाम बन जाता है। उसके पास रुपया-पैसा, धन-दौलत, नाम सब मिल जाता है। विजय से उलट रवि को रवि को कानून पर पूरा विश्वास है। वह सच्चाई और ईमानदारी में पूरा विश्वास रखता है। विजय धन और नाम के लिए अपराध की दुनिया चुनता है। सलीम और जावेद अख्तर उस दौर में हिंदी सिनेमा के सबसे लोकप्रिय और बिकाऊ नाम थे। इन्होंने भारतीय समाज की अमीरी, गरीबी, सच्चाई-ईमानदारी, प्रेम-नफरत को आधार बनाकर कई फिल्में लिखीं। सलीम खान और जावेद का नाम इस दौर में सबसे ज्यादा चर्चित था। इनकी जोड़ी फिल्म के हिट होने की गारंटी मानी जाती थी। इन दोनों ने 1971-1987 के बीच लगभग दो दर्जन फिल्मों में काम किया। अधिकतर फिल्में सफल रहीं। कहा जाता है कि जावेद अख्तर फिल्म की स्क्रिप्ट लिखते थे और सलीम कहानी गढ़ते थे। सलीम का फिल्मों में आना इत्तेफाक ही था। विख्यात फिल्म निर्देशक के॰ अमरनाथ किसी विवाह उत्सव में सलीम को देखा और उनकी सुंदरता से प्रभावित होकर उन्हें अभिनेता बनने की सलाह दी। अमरनाथ ने उन्हें 500 रुपया महीना पर अभिनेता के रूप में काम दिया। सलीम ने शुरुआती दौर में कई फिल्मों में छोटे-बड़े रोल किए। अभिनय में सफलता नहीं मिलने पर वह लेखन में आ गए। जावेद अख्तर आरंभ से ही फिल्मों में लेखन करते रहे। आरंभिक दौर में उन्हें भी संघर्ष करना पड़ा लेकिन बहुत जल्द ही उन्होंने एक गीतकार और पटकथा लेखक के रूप में अपनी जगह बना ली। जावेद आज भी दोनों में सफल लेखक माने जाते हैं। इस फिल्म से ही अमिताभ हिंदी सिनेमा और समाज में एंग्री यंग मैन के रूप में पूर्ण रूप से स्वीकार किए गए। हालाकि इसकी शुरुआत जंजीर से ही हो गई थी। अमिताभ बच्चन द्वारा निभाया गया विजय का यह किरदार पहले राजेश खन्ना को ऑफर हुआ था लेकिन यश चोपड़ा ने अमिताभ बच्चन और शशि कपूर को चुना। सलीम-जावेद की अधिकतर फिल्मों के नायक विद्रोही और अपने ढंग से जीने वाले होते हैं। इस फिल्म में विजय का किरदार भी इसी तरीके का है। निरुपा राई ने इस फिल्म से हिंदी सिनेमा में 'माँ' की छवि को बदल दिया। आदर्शों और नैतिकता के रास्ते पर चलने वाली माँ अंततः अपने ईमानदार बेटे को चुनती है। फिल्म समीक्षक मानते हैं कि निरुपा राय की यह भूमिका 'मदर इंडिया' से काफी मिलती जुलती है। फिल्म में बचपन से ही अमिताभ बच्चन अपनी मां के साथ मंदिर जाना, जीवन के कड़वे यथार्थ को वह इस कदर समझ चुका है कि भगवान से उसका भरोसा उठ चुका है। ईश्वर पर भरोसा नहीं करने वाला यह बच्चा बचपन से बूट पालिश करके परिवार का खर्चा चलाता है। वह बचपन से ही इतना

स्वाभिमानी है कि पालिश करने के बाद जब एक सेठ उसे हाथ में पैसा न देकर जमीन पर फेकता है तो वो कहता है- "मैं फेंके हुए पैसे नहीं उठाता।" सेठ बच्चे की इस खुद्दारी से बहुत प्रभावित होता है और अपने आदमी से बोलता है- "देखना ये लड़का एक दिन बहुत आगे जाएगा।" इस फिल्म के संवादों ने बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की। फिल्म के एक दृश्य में जब कुछ गुंडे विजय को पीटने पहुँचते हैं तो वह कहता है- "पीटर तेरे आदमी मुझे बाहर ढूंढ रहे हैं और मैं तुम्हारा यहां इंतज़ार कर रहा हूँ। दरवाज़ा अंदर से बंद कर पीटर की ओर चाभी फेकते हुए कहता है कि-"तुमसे चाबी लेकर मैं ये दरवाजा खोलूंगा।"

इस फिल्म के कुछ संवाद बहुत चर्चित हुए-"मेरा बाप चोर है"

"आज मेरे पास बंगला है, गाड़ी है, बैंक बॅलेन्स है, तुम्हारे पास क्या है-मेरे पास माँ है"

"मैं आज भी फैंके हुए पैसे नहीं उठाता"

"ये चाबी अपनी जेब मैं रख ले पीटर, अब ये ताला मैं तेरी जेब से चाबी निकाल कर ही खोलूँगा"

"पीटर तुम मुझे वहाँ ढूंढ रहे हो और मैं तुम्हारा यहाँ इंतज़ार कर रहा हूँ."

नई तकनीकी : संभावनाएँ और चुनौतियाँ

दीवार हिंदी सिनेमा की पहली ऐसी फिल्म है जिसमें अमिताभ बच्चन की जो छवि निर्मित हुई वह आज तक लगभग बनी हुई है। तकनीक के हिसाब से देखें तो है हिंदी सिनेमा का वह दौर है जब फिल्मों में कैमरा और उसका उपयोग बिल्कुल नए ढंग से होने लगा था। दीवार में अमिताभ बच्चन की गूंजती आवाज के लिए विशेष तरह प्रयोग किया गया था। इस फिल्म ने मंदिर, मुंबई शहर की जीवंतता, तत्कालीन रहन - सहन को कैमरे में पूरी जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया गया है। दीवार की पटकथा बिल्कुल नई थी। हिंदी सिनेमा में आदर्श और नैतिकता के द्वंद्व को लेकर कई फिल्मों का निर्माण हुआ लेकिन यह फिल्म मिशाल बन गई। इस फिल्म ने ना केवल बेहद लोकप्रियता प्राप्त की बल्कि संवाद और पटकथा के नएपन के कारण सिनेमा की धारा ही बदल दी। इस फिल्म से जावेद अख्तर और सलीम की लेखनी ने निर्देशकों और लेखकों के लिए नई दृष्टि दे दी। फिल्म के एक एक दृश्य को कैमरे में पूरी जीवंतता के साथ प्रस्तुत कर उसे आम जानता कि संवेदना से जोड़ दिया गया। दीवार को देखने वालों की संख्या हर वर्ग में थी। यह ऐसी फिल्म साबित हुई जिसमें अमिताभ और शशि कपूर दोनों के अभिनय की दिशा बदल दी।

फिल्म	**: पीके**
निर्देशक	: राजकुमार हिरानी
निर्माता	: राजकुमार हिरानी
	: विधु विनोद चोपड़ा
	: सिद्धार्थ रॉय कपूर
पटकथा	: अभिजत जोशी
	: राजकुमार हिरानी
कलाकार	
आमिर ख़ान	: पीके (परग्रही)
अनुष्का शर्मा	: जगत जननी / जग्गू
संजय दत्त	: भैरों सिंह
बोमन ईरानी	: समाचार चैनल का मुख्य
सुशांत सिंह राजपूत	: सरफ़राज़ यौसुफ
परीक्षित साहनी	: जयप्रकाश साहनी
सचिन पारेख	: तपस्वी का सहायक
रोहिताश गौड़	: पुलिस
राम सेठी	
रीमा डेबनाथ	
रुखसार रहमान	
बृजेन्द्र काला	
रणबीर कपूर	: परग्रही का मित्र (विशेष उपस्थिती)
छायाकार	: सी के मुरलीधरन
संपादक	: राजकुमार हिरानी
स्टूडियो	: विनोद चोपड़ा फिल्म्स

: राजकुमार हिरानी फिल्म

फिल्म पीके

पीके राजकुमार हिरानी द्वारा निर्देशित एक सफल फिल्म है। पीके परग्रही (एलियन) की कहानी है। जो पृथ्वी पर गलती से आ जाता है। फिल्म में फंसाती विधा का सहारा लिया गया है। उसमें एक रिमोट है जिससे वह एलियन (आमिर खान) धरती पर आता है। उस रिमोट को एक चोर लेकर भाग जाता है। इसके बाद वह धरती पर ही घूमता रहता है। इसी क्रम में उसकी मुलाक़ात जग्गू (अनुष्का शर्मा) से होती है। पीके उसे अपने पिछले किए गए कार्यों के बारे में बताता है। वह बताता है कि किस तरह उसने कपड़ा पहनना और सामान लेना आदि सीखा। इसके अलावा वह बताता है कि वह भैरों सिंह (संजय दत्त) से मिलता है वह उसे एक जगह ले जाता है, जहाँ वह एक युवती के हाथ पकड़ कर छः घंटो में भोजपुरी सीख लेता है। पीके को पता चलता है कि उसके रिमोट को किसी चोर ने लेकर दिल्ली में बेच दिया होगा। इस लिए वह राजस्थान से दिल्ली आता है। जहाँ उसे जग्गू मिलती है। एक दिन जग्गू के मन को पीके पढ़ता है तो उसे सरफराज के बारे में पता चलता है, जो उसे प्यार करता है। वह इन दोनों के प्रेम की गुत्थी भी सुलझता है, वह अलग कहानी है।

फिल्म में एलियन बने पीके (अमीर खान) को कनेक्ट करने वाले यान का रिमोड एक चोर चोरी कर लेता है। वह रिमोड एक पाखंडी बाबा के पास चला जाता है जिसे वह ईश्वर प्रदत्त बताकर जनता को लुटता है। रिमोड खो जाने से एलियन का संपर्क अपने साथियों से टूट जाता है। इसी कारण उसे ज़मीन पर रहना पड़ता है। जमीन पर रहने के क्रम में वह भारतीय समाज की तमाम बिडंबनाओं से परिचित होता है। फिल्म में जग्गू (अनुष्का शर्मा) आधुनिक विचारों वाली मस्तमौला लड़की है जो कि पाकिस्तानी लड़के सरफराज (सुशांत सिंह राजपूत) से प्यार करती है। जग्गू अपने पिता (परीक्षित साहनी) को अपने प्रेम के बारे में बताती है तो तो वह साफ मना कर देते हैं, क्योंकि वह एक पाकिस्तानी है। जग्गू के पिता अपने गुरु स्वामी (सौरभ शुक्ल) से बात करते हैं। गुरु पाखंडी और बेईमान है। वह कहानी गढ़ता है कि वह लड़का जग्गू को धोका देगा। गलत फहमी से वह दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं जिससे पाखंडी गुरु को और बोलने का मौका मील जाता है। जग्गू जब भारत

लौटती है तो उसकी मुलाक़ात पीके से होती है। पीके उसे अपने अतीत के बारे में बताता है। वह बताता है कि किस तरह उसने कपड़ा पहनना और सामान लेना आदि सीखा। इसी बीच वह भैरों सिंह (संजय दत्त) से मिलता है। भैरों सिंह उसकी मदद करता है और एक ब्लास्ट में मारा जाता है। एलियन होने कारण पीके हाथ पकड़ कर मन की बात बता देता है। एक दिन पीके जग्गू के पढ़ता है तो उसे सरफराज के बारे में पता चलता है। वह नाटकीय ढंग से जग्गू और सरफराज को मिलता है। उसे पता चलता है कि उसका रिमोड उसी पाखंडी बाबा के पास है तो दुनिया के सामने उसका सच भी लता है। अंत में जग्गू और सरफराज को मिलाकर पीके वापस अपनी दुनिया में चला जाता है।

दरअसल यह फिल्म कुछ-कुछ 'ओ माई गॉड' जैसी ही है, जिसमें जाति, धर्म के आधार पर अलग-अलग बंटे लोगों को दिखाया गया है। वह एलिएन एक दिन भगवान की मूर्ति बेचने वाले से पूछता है कि क्या मूर्ति में ट्रांसमीटर लगा है जो उसकी बात भगवान तक पहुंचेगी। दुकानदार नहीं बोलता है तो पीके कहता है कि जब भगवान तक डायरेक्ट बात पहुंचती हो तो फिर मूर्ति की क्या जरूरत है? ऐसे ढेर सारे सवाल पूरी फिल्म में पीके पूछता रहता है और ज्ञानी-ध्यान कोई भी उसका जबाब नहीं दे पता।

मंदिर जाता है तो कहा जाता है कि जूते बाहर उतारो, लेकिन चर्च में वह बूट पहन कर अंदर जाता है। कहीं भगवान को नारियल चढ़ाया जाता है तो कहीं पर वाइन। एक धर्म कहता है कि सूर्यास्त के पहले भोजन कर लो तो दूसरा धर्म कहता है कि सूर्यास्त होने के बाद रोजा तोड़ो। भगवान से मिलने के लिए वह दान पेटी में फीस भी चढ़ाता है, लेकिन जब भगवान नहीं मिलते तो वह दान पेटी से रुपये निकाल लेता है। धर्म के नाम पर हो रही कुरीतियों पर उन्होंने कड़ा प्रहार किया है। पीके को एलियन के रूप में दिखाना उनका मास्टरस्ट्रोक है। एक ऐसे आदमी के नजरिये से दुनिया को देखना जो दूसरे ग्रह से आया है एक बेहतरीन विषय-वस्तु है। इस फिल्म के माध्यम से दुनिया में फैले अंधविश्वासों को गहराई से देखा जा सकता है।

भगवान के नाम पर कुछ लोग ठेकेदार बन गए हैं और उन्होंने इसे बिजनेस बना लिया है। फिल्म में एक सीन है जिसमें एक गणित महाविद्यालय के बाहर पीके एक पत्थर को लाल रंग पोत देता है। कुछ पैसे चढ़ा देता है और विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थी उस पत्थर के आगे पैसे चढ़ाने लगते हैं। इस सीन से दो बातों को प्रमुखता से पेश किया गया है। एक तो यह कि धर्म से बेहतर कोई धंधा नहीं है। लोग खुद आते हैं, शीश नवाते हैं और खुशी-खुशी पैसा

चढ़ाते हैं। दूसरा ये कि विज्ञान पढ़ने वाले भी अंधविश्वास का शिकार हो जाते हैं। बचपन से ही संस्कार के नाम पर उनमें कुछ अंधविश्वास डाल दिए जाते हैं जिनसे वे ताउम्र मुक्त नहीं हो पाते। फिल्म उन संतों को भी कटघरे में खड़ा करती है जो चमत्कार दिखाते हैं। हवा से सोना पैदा करने वाले बाबा चंदा क्यों लेते हैं या देश की गरीबी क्यों नहीं दूर करते? धर्म के नाम पर लोगों में भय पैदा करने वालों पर भी नकेल कसी गई है। जब ऊपर वाले ने तर्क-वितर्क की शक्ति दी है तो क्यों भला हम अतार्किक बातों पर आंखें मूंद कर विश्वास करें। बातें बड़ी-बड़ी हैं, लेकिन उपदेशात्मक तरीके से इन्हें दर्शकों पर लादा नहीं गया है। हल्के-फुल्के प्रसंगों के जरिये इन्हें दिखाया गया है जिन्हें आप ठहाके लगाते और तालियां बजाते देखते हैं। इंटरवल के बाद जरूर फिल्म दोहराव का शिकार लगती है। गाने लंबाई बढ़ाते हैं, लेकिन फिल्म से आपका ध्यान नहीं भटकता। पीके देखते समय 'ओह माय गॉड' की याद आना स्वाभाविक है, लेकिन पीके अपनी पहचान अलग से बनाती है। आज के समय में यह फिल्म इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि इसमें कही गई बातों को वैज्ञानिक तर्क से तोड़ा गया है। वैज्ञानिकता उत्तराधुनिकता की जड़ है। समाज में जो हो रहा है उससे अलग नया क्या हो सकता है यही जानना उत्तराधुनिकता है जो इस फिल्म में दिखता भी है।

नई तकनीकी : संभावनाएँ और चुनौतियाँ

फिल्म की कहानी एक एलियन (आमिर खान) की है। एलियन का नाम पीके है जो गलती से पृथ्वी पर आ जाता है। फिल्म तकनीकी का जबर्दस्त प्रयोग किया गया है। अमीर खान को एलियन के रूप में दिखाने तथा उसके यान की संकल्पना तकनीकी आधारित ही है। उस यान को बुलाने वाला वाला रिमोट, जो की डमरू की तरह घूमता है, भी नई तकनीकी का एक उदाहरण है। फिल्म में अमीर खान का गेट अप और एलियन के हिसाब से तैयार किए दृश्य नई तकनीकी का शानदार उदाहरण हैं। आमिर खान की उम्र इस समय लगभग पचपन वर्ष हो चुकी है लेकिन इस फिल्म में वह तीस वर्ष के दिखते हैं तो इसमें भी तकनीकी संसाधनों का भरपूर प्रयोग हुआ है।